बैंकिंग में सुधार, उत्पादकता और कार्यकुशलताः भारतीय अनुभव *

राकेश मोहन

सबसे पहले मैं इस सम्मेलन को आयोजित करने के लिए पाकिस्तान सोसायटी ऑफ डेवलपमेंट इकॉनोमिस्टस को बधाई देता हूँ। हाल के वर्षों में उत्पादकता और कार्यकुशलता के मुद्दे चर्चा के केंद्र बिंदु रहे हैं। वित्तीय क्षेत्र के अलावा अन्य कोई क्षेत्र खरा नजर नहीं आता, जिसे अर्थव्यवस्था का मस्तिष्क कहा जा सके (स्टिगलिट्ज 1998)। हमारी तरह अधिकांश उभरते बाजारों में बैंक आधारित वित्तीय प्रणाली के प्रभुत्व और वित्तीय प्रणाली में बैंकों के प्रणालीगत महत्व को देखते हुए, वित्तीय क्षेत्र के अंतर्गत भी बैंकिंग क्षेत्र शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं के लिए ध्यान का केंद्र बना हुआ है। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि बैंकिंग क्षेत्र के कार्य निष्पादन का पूरी अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ा है। ऐसा भान होने पर, मुझे इस सम्मेलन की विषयवस्तु ने इसकी प्रासंगिकता और सामयिकता की दृष्टि से प्रभावित किया है। केंद्रीय बैंकर के रूप में, मेरा भारतीय बैंकिंग में उत्पादकता और कार्यकुशलता विषय पर बोलना ठीक ही है।

सामान्यतया सुधारों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था की वृद्धि की गति को बढ़ाना है, जो प्रति व्यक्ति आय के रूप में परिभाषित की गई है। प्रतीक रूप में, वृद्धि दर में सुधार तीन प्रकार से किया जा सकता हैः पूंजी की उत्पादकता में सुधार करके, मानव पूंजी में निवेश करके और कुल कारक उत्पादकता (टीएफपी) को बढ़ा करके, न कि अनिवार्यतः पारस्परिक रूप से एकांतिक माध्यमों के द्वारा।

वित्तीय क्षेत्र के कार्यों की गुणवत्ता से अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के कार्य-कलापों और उत्पादकता को प्रभावित करने की आशा की जा सकती है। कुशल वित्तीय मध्यस्थता को देश-व्यापी संसाधनों के आबंटन में सुधार करना चाहिए जिससे चौतरफा उत्पादकता वृद्धि को बढ़ावा मिले। इसलिए आर्थिक कार्यकुशलता और उत्पादकता की चर्चा में वित्तीय क्षेत्र के विकास के विश्लेषणों को शामिल करना चाहिए। बढ़ती मात्रा और आंबटन कार्यकुशलता की दृष्टि से, भौतिक और मानवीय पूंजी के वित्तपोषण में सुधारों से देश में कार्यकुशलता और उत्पादकता बढ़नी चाहिए। यह दृष्टिकोण आज के मेरे विषय चयन को सही ठहराता है।

वित्तीय मध्यस्थता व्यापक और सघन दोनों वृद्धियों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। बचत कर्ताओं से उपयोगकर्ताओं के बीच निधियों की कुशल मध्यस्थता उपलब्ध संसाधनों को बेहतरीन उत्पादक प्रयोगों हेतु समर्थ बनाती है। संसाधन बनाने और उनके आबंटन में वित्तीय प्रणाली जितनी अधिक कुशल होगी, उत्पादकता और आर्थिक वृद्धि में उसका योगदान उतना ही अधिक होगा। जैसे-जैसे संसाधनों के आबंटन में सुधार होता है और वास्तविक लाभ बढ़ते है, वैसे-वैसे बचत में धारणा के अनुरूप प्रतिक्रिया प्राप्त होगी और अधिक संसाधन सृजन के परिणाम सामने आएंगे। इसलिए, वित्तीय प्रणाली का विकास अधिक उत्पादकता के सृजन और आर्थिक वृद्धि के लिए आवश्यक है।

मैं अपना भाषण आगे कही गई पंक्तियों की तर्ज पर दूँगा। पहले, मैं संक्षेप में शेष अर्थव्यवस्था पर बैंकिंग क्षेत्र की उत्पादकता के प्रभाव का पता लगाऊंगा। यह इस तथ्य की दृष्टि से संगत है कि बैंकिंग में उत्पादकता और कार्यकुशलता के मुद्दों पर किसी भी चर्चा को वित्तीय विकास तथा अन्य देश-विशेष के लक्षणों के स्तर से जोड़कर देखने की आवयकता होगी। इसके पश्चात् भारत में बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की एक संक्षिप्त समीक्षा करूंगा। इसके बाद, कुछ विस्तार में भारतीय बैंकिंग में उत्पादकता और कार्यकुशलता की प्रवृत्तियों की जांच करूंगा। मेरी निष्कर्ष टिप्पणी वर्तमान समय में इस क्षेत्र से संबद्ध क्षेत्रों पर होगी।

2. बैंकिंग की उत्पादकता शेष अर्थव्यवस्था को कैसे प्रभावित करती है ?

आर्थिक इतिहास इस तथ्य को समर्थन देता है कि वित्तीय विकास का वृद्धि में मौलिक योगदान होता है। वित्तीय विकास ने बड़े निवेशों के लिए पूंजी जुटाने को सुगम बनाकर विकसित देशों में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने में मदद की है। भली प्रकार से कार्य करने वाले बैंकों अथवा अन्य वित्तीय मध्यवर्ती संस्थाओं जैसे कि उद्यम पूंजी निधियों ने उन उद्यमियों की पहचान करके और वित्त पोषण करके तकनीकी नवेन्मेषों

* दिसंबर 2005 को इस्लामाबाद में पाकिस्तान सोसायटी ऑफ डेवलपमेंट इकॉनोमिस्टस की 21वीं वार्षिक सामान्य बैठक और सम्मेलन के अवसर पर भारतीय रिज़र्व बैंक के उप गवर्नर डॉ. राकेश मोहन द्वारा दिया गया भाषण । इस पेपर के तैयार करने में अभिमान दास, शैवाल घोष और पार्थ रे की सहायता के लिए हार्दिक आभार ।

को बढ़ावा दिया है जिनके पास नए उत्पादों को सफलतापूर्वक विकसित करने और नवीन उत्पादन प्रक्रियाओं को कार्यान्वित करने के सर्वोत्तम अवसर हैं।

हाल के अनुसंधान ने इस विचार का समर्थन करके जबरदस्त प्रमाण दिया है कि वित्तीय विकास आर्थिक वृद्धि में सहयोग देता है।

- देशव्यापी स्तर पर वित्तीय विकास के विभिन्न मानदंड (वित्तीय क्षेत्र की आस्तियों के मानदंड,निजी क्षेत्र को घरेलू ऋण और शेयर बाज़ार पूंजीकरण सहित) सकारात्मक रूप से आर्थिक वृद्धि से संबंधित पाए गए हैं।
- अन्य अध्ययन उद्योग स्तर पर वित्तीय विकास और वृद्धि के बीच सकारात्मक संबंध स्थापित करते हैं (राजन और जिंगेल्स, 1998)।
- उसी प्रकार, फर्म स्तर पर, देशों में गहन वित्तीय विकासवाली फर्में अधिक बाहरी निधियां प्राप्त कर लेती हैं और इस प्रकार तेजी से बढ़ती है (डेमिरगुक - कुंत एंड मॉक्सीमोविक, 1998)।

सघउ में वित्त से संबंधित गतिविधियों का योगदान वित्तीय विकास का मूल संकेतक है। भारत में वित्त से संबंधित गतिविधियों से उत्पन्न वास्तविक सघउ का हिस्सा 1970 में लगभग 2 प्रतिशत से तीन गुना और 1990 में 6 प्रतिशत के लगभग और इस दशक के पहले 5 वर्ष में 7 प्रतिशत हो गया। सेवा क्षेत्र में, वित्त का हिस्सा 5 प्रतिशत से कम से इसी अवधि में 12 प्रतिशत से अधिक बढ़ा (सारणी 1)।

सारणी 1 : बैंकिंग और बीमा से उत्पन्न वास्तविक सघउ का हिस्सा

(प्रतिशत)

अवधि	सघउ में बैंकिंग और बीमा का हिस्सा	सेवाओं में बैंकिंग और बीमा का हिस्सा
1970-71 से 1974-75	1.8	4.6
1975-76 से 1979-80	2.2	5.4
1980-81 से 1984-85	2.5	5.9
1985-86 से 1992-93	3.9	8.5
1993-94 से 1998-99	5.8	11.8
1999-2000 से 2003-04	6.7	12.3

स्रोत : राष्ट्रीय लेखा परीक्षा सांख्यिकीय, केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन से गणना की गई।

सारणी 2 : वित्तीय विकास के निधि आधारित संकेतकों का प्रवाह

अवधि	एफआर	एफआइआर	एनआइआर	आइआर
1970-71 से 1974-75	0.2	1.4	0.8	0.8
1975-76 से 1979-80	0.3	1.8	1.0	0.7
1980-81 से 1984-85	0.3	2.4	1.4	0.7
1985-86 से 1989-90	0.4	2.4	1.4	0.7
1991-92	0.5	2.9	1.6	0.8
1994-95	0.5	2.4	1.2	0.9
1995-96	0.5	2.3	1.3	0.7

एफआर = वित्तीय अनुपात = कुल निर्गम / राष्ट्रीय आय (वर्तमान कीमतों पर निवल राष्ट्रीय आय)

एफआइआर = वित्तीय अंतर-संबंध अनुपात = कुल निर्गम / निवल घरेलू पूंजी निर्माण

एनआइआर = नए निर्गम अनुपात = प्राथमिक निर्गम / निवल घरेलू पूँजी निर्माण

आइआर = अंतर-संबंध अनुपात = द्वितीयक निर्गम (अर्थात बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं के निर्गम) / प्राथमिक निर्गम[1]

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

वित्तीय विकास के व्यापक आधार वाले संकेतक, जो निधि प्रवाह खाते से लिए गए, शनैः शनैः विस्तृत होती और गहराती अर्थव्यवस्था के भी प्रमाण हैं। सामान्य रूप में पाए गए अधिकांश अनुपातों में 1970 और 1980 के दौरान ऊर्ध्वमुखी रुझान दिखा (सारणी 2)। रोचक बात यह है कि वित्तीय अनुपात में, वित्तीय मजबूती के एक प्रॉक्सी के रूप में, इस अवधि में महत्वपूर्ण सुधार दिखा।

जब हम इन व्यापक आधारित संकेतकों से और विशिष्ट चलनिधि और ऋण आधारित संकेतकों से दूर जाते हैं, तो ठीक इसी प्रकार का दृश्य उभरता है। उदाहरण के तौर पर, सघउ के साथ कुल जमाओं का अनुपात वर्तमान दशक के पहले पाँच वर्षों में 50 प्रतिशत बढ़ा, 1990 के दशक से एम$_3$/सघउ का औसत 50 प्रतिशत के लगभग रहा है। थोड़े से और पृथक-पृथक स्तर पर सरकार को दिए गए बैंक ऋण में 1990 के दशक के उत्तरार्ध में कुछ कमी दिखी जबकि वाणिज्यिक क्षेत्र को दिए गए ऋण का औसत वर्तमान दशक के पूर्वार्ध में जीडीपी का 30 प्रतिशत था (सारणी 3)। ये विचार मध्यस्थता प्रक्रिया में बैंकों की भूमिका की दृष्टि से खास तौर से प्रासंगिक है। वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ रखने पर, यह मशविरा मिलता है कि उदारीकरण प्रक्रिया के समय से बैंकों की बढ़ी हुई स्वतंत्रता ने उनको संसाधन जुटाने और

1 निर्गमों से तात्पर्य है निधियों के स्रोत अथवा क्षेत्र की वित्तीय देयताएं। द्वितीयक निर्गमों से तात्पर्य वित्तीय मध्यस्थों द्वारा जारी निर्गमों से है (अर्थात् बैंक और अन्य वित्तीय संस्थाएं) इसलिए द्वितीयक निर्गम (=) बैंकिंग क्षेत्र की निधियों के स्रोत + अन्य वित्तीय क्षेत्र की निधियों के स्रोत
प्राथमिक निर्गमों से तात्पर्य वित्तीय मध्यस्थोंको छोड़कर सभी क्षेत्रों के निर्गमों से है।
वित्तीय अनुपात (एफ आर)
वित्तीय विकास और समग्र आर्थिक वृद्धि के बीच संबंधों को दर्शाता है।
वित्तीय विकास और भौतिक निवेश की वृद्धि के बीच संबंधों को वित्तीय अन्तर-संबंध अनुपात (एफ आइ आर) के अंतर्गत शामिल किया गया है।
नवनिर्गम अनुपात (एनआइआर) गैर वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किए गए प्राथमिक दावो के अनुपात को दर्शाता है।
अंतर संबंध अनुपात (आइआर) वित्तीय लेन-देनों में वित्तीय संस्थाओं के सापेक्षिक महत्त्व को दर्शाता है।
(स्रोत : रंगराजन और जाधव; 1992)

सारणी 3 : चलनिधि और वित्तीय विकास के ऋण आधारित संकेतक

(बाजार की वर्तमान कीमतों पर जीडीपी का प्रतिशत)

अवधि	कुल जमा	एम$_3$	सरकार को बैंक ऋण	वाणिज्यिक क्षेत्र को बैंक ऋण
1970-71 से 1974-75	16.4	25.9	13.3	15.6
1975-76 से 1979-80	24.1	33.0	14.0	21.8
1980-81 से 1984-85	30.0	39.1	18.7	26.9
1985-86 से 1989-90	36.1	45.4	22.9	30.3
1990-91 से 1994-95	39.6	49.3	23.6	29.0
1995-96 से 1999-00	43.8	53.8	21.9	28.6
2000-01 से 2004-05	54.7	65.3	24.9	33.5

स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

उनके नियोजन में लोच प्रदान की है जो इन अनुपातों के ऊपर बढ़ने की स्थिति से स्पष्ट है। इस प्रकार भारत में लगातार वित्तीय सुदृढ़ता आती रही है जो अब भी गतिमान है।

वर्ष 1971-72 से 1999-2000 की बढ़ी हुई समय सीमा में वित्त और वृद्धि के बीच संबंधों पर रिज़र्व बैंक (आरबीआइ 2000) द्वारा किए गए अध्ययन में यह पाया गया है कि वित्त (वास्तविक एम$_3$ वृद्धि द्वारा प्रॉक्सी किया गया) और वृद्धि (वास्तविक सघउ वृद्धि द्वारा प्रॉक्सी किया गया) के बीच आकस्मिकता द्वि-दिशात्मक है। लेकिन, ऐसे संबंधों में अंतर्निहित किसी संरचनात्मक मॉडल की अनुपस्थिति में, इन आकस्मिक अनुमानों को केवल प्रत्येक चर की भावी विषयवस्तु के संदर्भ में प्रतिपादित किया जा सकता है। भारत में वित्त और वृद्धि के बीच अंतर संबंद्धता पर किया गया परवर्ती शोध इस विचार के आस-पास घूमता है कि भारत में वृद्धि की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से 'वित्त प्रधान' रही है : वित्तीय क्षेत्र के विस्तार ने पूंजी संचय को बढ़ावा देने में अहम भूमिका अदा की है, जिसने, बदले में, उच्च वृद्धि के लिए खतरा उत्पन्न किया है (बेल और रूसो 2001)। लेकिन, इस प्रकार के अध्ययन समय अवधि और चरों के विकल्प के प्रति संवेदनशील होते हैं जिससे विभिन्न अवधि में चरों के दूसरे समूह संभवतः अलग-अलग निष्कर्षों पर पहुंच सकें। लेकिन यह बात स्वीकृत है कि भारत में वृद्धि प्रक्रिया को प्रभावित करने में वित्त की भूमिका अवश्य होती है, यद्यपि वित्तीय सुदृढ़ता से संबंधित ऐसे विचारों का कार्य कुशलता और उत्पादकता वृद्धि पर कम प्रभाव पड़ता है।

उपर्युक्त विचार वित्तीय प्रणाली की बदलती गतिशीलता को ध्यान में नहीं लेते। बैंक अथवा बाजार आधारित के रूप में वित्तीय प्रणाली का पारंपरिक वर्गीकरण प्रायः स्थिर होता है, इसके विपरीत वित्तीय प्रणाली संस्थागत वातावरण, विधिक व्यवस्था और देश विशिष्ट लक्षणों के अनुसरण में समय-समय पर बनती और विकसित होती है। भारत में भी ऐसा ही मामला है। आप में से बहुतों को जानकारी होगी कि वित्तीय प्रणाली के देशव्यापी वर्गीकरण में भारत को विशेष रूप से बैंक आधारित प्रणाली के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यह आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि बैंक पारंपरिक रूप से प्रबल वित्तीय मध्यस्थ रहे हैं। तो भी, कुल वित्तीय क्षेत्र की आस्तियों में बैंकों का संबंधित हिस्सा, जो 1980 के प्रारंभिक दशक में लगभग तीन चौथाई था, कुछ समय के पश्चात्, धीरे-धीरे कम हो गया और 1990 के दशक से दो-तिमाही के आस-पास घूमता रहा है (रे और सेनगुप्ता, 2004)।

और भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि 1990 के दशक से स्टॉक बाजार में तीव्र वृद्धि के कारण, 'बाजार-आधारित' वित्त की भूमिका बढ़ती जा रही है। वित्तीय प्रणाली पुनर्भिविन्यास के लिए सामान्यतया प्रयुक्त मानदंड-बैंक आस्तियों के प्रति बाजार पूंजीकरण का अनुपात - इस विचार का समर्थन करते हैं (सारणी 4)। इससे सलाह मिलती है कि न केवल वित्तीय संस्थाओं ने वित्तीय आस्तियों की दृष्टि से लाभ कमाया है, बल्कि इनमें बाजार वित्त पोषण को बढ़ाने की पर्याप्त क्षमता है। बाजार पूंजीकरण की मात्रा स्पष्ट रूप से शेयर बाजार की अनिश्चितताओं पर निर्भर है : सघउ अनुपात के रूप में लगातार वृद्धि प्रदर्शन की आशा नहीं है, जबकि बैंक आस्तियों/ सघउ में वृद्धि अधिक नियमित है।

जबकि वित्तीय सुदृढ़ता को मापना आसान है, बैंकिंग में उत्पादकता और कार्यकुशलता में परिवर्तन का विश्लेषण करना जटिल है तथा इसे भारत में बैंकिंग उद्योग की बदलती रूपरेखा के साथ देखे जाने की आवश्यकता है।

सारणी 4 : वित्तीय प्रणाली अभिविन्यास

(बाजार की वर्तमान कीमतों पर जीडीपी के प्रतिशत के रूप में)

समाप्ति पर	अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की आस्तियां	बीएसई में बाजार पूंजीकरण	वित्तीय प्रणाली अभिविन्यास
(1)	(2)	(3)	(4)=(3)/(2)x100
दिसंबर 1970	17.9	3.8	21.3
दिसंबर 1975	21.0	2.6	11.0
दिसंबर 1980	40.0	3.8	9.3
दिसंबर 1985	46.8	7.4	15.2
मार्च 1991	56.3	16.0	28.4
मार्च 1995	51.6	43.1	83.5
मार्च 2000	59.1	46.8	79.3
मार्च 2003	69.0	23.2	33.7
मार्च 2004	71.6	43.5	60.8
मार्च 2005	75.9	54.7	72.1

बीएसई : राष्ट्रीय शेयर बाजार, मुंबई।

स्रोत : आरबीआई द्वारा प्रकाशित भारतीय अर्थव्यवस्था की सांख्यिकीय पर हैंडबुक से गणना की गई।

3. भारतीय बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की रूपरेखा[2]

भारत में बैंकिंग क्षेत्र के परिवर्तनों को समग्र आर्थिक सुधार प्रक्रिया और वैश्विक वातावरण, जिसके अंतर्गत बैंक कार्य करते हैं, में हो रहे तीव्र बदलावों के आलोक में देखे जाने की आवश्यकता है। परिवर्तन की वैश्विक ताकतों में, तकनीकी नवोन्मेष, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वित्तीय सेवाओं में विनियमन, अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा के प्रति हमारा बढ़ता जोखिम और समान रूप से महत्वपूर्ण कंपनी व्यवहार जैसे कि बढ़ती मध्यस्थहीनता और अंशधारकों के मूल्य पर बढ़ते जोर में परिवर्तन, शामिल हैं। एशिया, लैटिन अमरीका और अन्यत्र अभी हाल के बैंकिंग संकट ने इन दबावों को बढ़ाया है।

जैसा कि आप में से बहुत लोग जानते है कि भारत को 1991 में भुगतान संतुलन के गंभीर संकट के कारण आर्थिक सुधारों की रणनीति अपनानी पड़ी, सुधारों का मुख्य केंद्र वित्तीय क्षेत्र में सुधार था और चूंकि बैंक वित्तीय मध्यस्थता के मुख्य आधार थे अत: बैंकिंग क्षेत्र था। बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों का उद्देश्य विविधीकृत, कार्यकुशल और प्रतियोगी वित्तीय प्रणाली को बढ़ाना देना था जिसका अंतिम उद्देश्य परिचालनात्मक लोच, विकसित वित्तीय कार्यक्षमता और संस्थागत सुदृढ़ता के माध्यम से संसाधनों की आबंटनकारी कार्यकुशलता को बढ़ाना है। पिछले 15 वर्ष के बैंकिंग उद्योग की सारांश रूपरेखा सारणी 5 में दी गई है।

जैसा कि आप जानते हैं कि 1990 के दशक के अंतिम भाग तक भारत की वित्तीय प्रणाली का स्वरूप था : बैंकों और वित्तीय संस्थाओं में प्रबल सरकारी स्वामित्व, प्रशासित और विविध प्रकार की ब्याज दरों का व्यापक प्रयोग और बैंकों तथा मौद्रीकरण के माध्यम से सरकारी राजकोषीय घाटे के बलात वित्तपोषण के कारण वित्तीय दमन। इस प्रकार, यद्यपि काफी हद तक वित्तीय सुदृढ़ता आई और वित्तीय बचतों में लगातार वृद्धि हुई, लेकिन वित्तीय बाजार में वास्तव में कार्य नहीं दिखा और धन की लागत अर्थात् ब्याज दरों के मामले में बहुत कम शोध हुआ। वित्तीय प्रणाली की कार्यकुशलता और उत्पादकता बढ़ाने वाले कार्य में बुरी तरह बाधा उत्पन्न हुई। इसप्रकार, वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के व्यापक प्रयास 1991 से लगातार चल रहे हैं।

मैं बैंकिंग क्षेत्र में सुधारों के बड़े-बड़े क्षेत्रों के बारे में संक्षेप से बताऊंगा[3]।

- वित्तीय दमन वैधानिक उपायों के कारण कम हुआ जबकि इसी क्षेत्र में विवेकपूर्ण विनियमन को बढ़ावा मिला।
- ब्याज दरें जमा और उधार देनेवाले दोनों के लिए क्रमिक तौर पर अविनियमित रहीं (बॉक्स 1)

बैंकिंग प्रणाली के स्वास्थ्य की बहाली शामिल है।

- पुनर्पूंजीकरण के माध्यम से जहाँ जरूरी है, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा प्राप्त किए गए निवल मूल्य की बहाली (कुल लागत सघउ के एक प्रतिशत से कम)।

सारणी 5 : बैंकिंग उद्योग की सारांश रूपरेखा : 1990-91 से 2004-05 तक

वर्ष / बैंक समूह	1990-91			1995-96			2004-05		
	पीएसबी	निजी	विदेशी	पीएसबी	निजी	विदेशी	पीएसबी	निजी	विदेशी
1. बैंकों की सं.	28	25	23	27	35(8)	29	28	29(9)	31
(क) सूचीबद्ध	कुछ नहीं	कुछ नहीं	कुछ नहीं	2	9(3)	कुछ नहीं	20	18(7)	कुछ नहीं
(ख) गैर सूचीबद्ध				25	26(5)	कुछ नहीं	8	11(2)	कुछ नहीं
2. के शेयर (प्रतिशत में)									
(क) आस्तियां	91.4	3.7	4.9	84.5	6.5(1.5)	7.9	75.3	18.2(12.5)	6.5
(ख) जमाएं	92.0	4.0	4.0	85.4	6.6(1.3)	6.7	78.0	17.3(10.9)	4.7
(ग) ऋण	93.0	4.0	3.0	82.4	6.8(1.9)	8.9	73.2	20.0(13.9)	6.8
(घ) आय	89.4	3.3	7.3	82.5	8.2	9.4	76.4	16.9	6.7
(ङ) व्यय	90.0	3.3	6.8	84.1	7.5	8.4	76.7	16.9	6.4
(च) लाभ	68.5	4.1	27.4	-33.3	55.6	77.8	74.2	16.4	9.4
3. *मीमो* बैंक आस्तियां / जीडीपी (प्रतिशत	56.3			50.4			80.4		

पीएसबी : सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक; एनए : लागू नहीं; लिस्टेड : मान्यता प्राप्त शेयर बाजार में सूचीबद्ध बैंक
निजी के अंतर्गत कोस्टक में दिए गए आंकड़े नए निजी बैंकों से संबंधित हैं।
स्रोत : भारतीय रिज़र्व बैंक।

2 मैंने अन्यत्र कहीं भारत में वित्तीय क्षेत्र में सुधारों के ब्योरों की चर्चा की है, मोहन (2005) को देखें ।

3 इस संबंध में एक विस्तृत विवरण भिडे आदि (2001) में दिया गया है ।

बॉक्स I : ब्याज दर विनियमन

जमा दर विनियमन

- अप्रैल 1992 :(क) 46 दिवस और 3 वर्ष तथा अधिक के बीच ब्याज दरें मुक्त कर दी गईं, लेकिन उच्चतम सीमा (सीलिंग) लगाई गई,
- (ख) अक्तूबर 1995 : 2 वर्ष से अधिक जमा के लिए उच्चतम सीमा हटाई गई।
- जुलाई 1996 : 1 वर्ष से अधिक की जमा के लिए उच्चतम सीमा हटाई गई।
- अक्तूबर 1997 : मीयादी जमा पर ब्याज दरें पूरी तरह विनियमित कर दी गई।
- 2004 : मीयादी जमाओं की न्यूनतम परिपक्वता घटाकर 7 दिन की गई।

उधार (देना) दर विनियमन

- 1992-93 : उधार देनेवाली दरों के छह वर्ग
  - 2 लाख रुपए से कम के लिए 5 स्लैब
  - 2 लाख रुपए से अधिक के लिए न्यूनतम उधार देने वाली दरें ।
- अक्तूबर 1994 : 2 लाख रुपए से ऊपर के ऋणों के लिए उधार देने की दरें मुक्त की गईं और न्यूनतम दर समाप्त की गई।
- अक्तूबर 1996 : बैंक पीएलआर से ऊपर अधिकतम अंतर (स्प्रेड) स्पष्ट करें।
- 1997-98 : 3 वर्ष के ऊपर के नकद ऋण/ मांग ऋण और मीयादी ऋण के लिए अलग पीएलआर की अनुमति दी गई। चल (फ्लोटिंग) दरों की अनुमति दी गई।
- 1998-99 : 2 लाख रुपए तक के ऋणों के लिए पीएलआर निर्मित उच्चतम सीमा।
- 1999-2000 : आशय (टेनर) संबद्ध पीएलआर की शुरुआत की गई।
- 2001-02 : पीएलआर निर्मित बेंच मार्क दर; 2 लाख रुपए से अधिक ऋणों के लिए उप पीएलआर की अनुमति दी गई।
- 2002-03 : भारिबैंक की वेबसाइट पर बैंकवार पीएलआर पारदर्शी बनाई गई।
- 2003-04 : बेंच मार्क पीएलआर की गणना को युक्तिसंगत बनाया गया और अवधि सहबद्ध पीएलआर को समाप्त कर दिया।

- निजी क्षेत्र के और विदेशी क्षेत्र के नए-नए बैंकों के आने से प्रतिस्पर्धा में वृद्धि।
- बाजार पारदर्शिता को बढ़ाने के लिए प्रकटीकरण के उच्चतर स्तर और मानकों को प्राप्त किया गया।
- अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं की दिशा में बैंक विनियमन और पर्यवेक्षण को सुदृढ़ किया गया।
- सूक्ष्म विवेकपूर्ण मानदंड बनाए गए।
- पर्यवेक्षण प्रक्रिया को ऑनसाइट और ऑफसाइट सतर्कता तथा बाहरी लेखा परीक्षण के साथ सरल और कारगर बनाया गया।
- जोखिम आधारित पर्यवेक्षण शुरू किया गया।
- समस्याग्रस्त बैंकों के लिए त्वरित सुधारात्मक कार्रवाई क्रियाविधि के माध्यम से संरचित और विवेकपूर्ण हस्तक्षेप की प्रक्रिया।
- सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के स्वामित्व को 49 प्रतिशत तक विनिवेश के माध्यम से व्यापक बनाया गया है और बैंकों की सूची बनाई गई है (सारणी 6)।

सारणी 6 : सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में निजी शेयर धारिता (31 मार्च 2005 के अनुसार)

शेयर धारिता (प्रतिशत में)	बैंकों की संख्या *
10 तक	4
10 से अधिक और 20 तक	–
20 से अधिक और 30 तक	5
30 से अधिक और 40 तक	6
40 से अधिक और 49 तक	6

* इसमें 19 राष्ट्रीकृत बैंक, भारतीय स्टेट बैंक और आइडीबीआई लि. शामिल हैं।

स्रोत : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति, 2004-05 - भारिबैंक

- वित्तीय समुच्चयों के विनियमन और पर्यवेक्षण के लिए व्यापक नियामक समन्वय तंत्र बनाया गया।
- लेनदारों के अधिकारों को मजबूत करने के लिए उपाए किए गए (अब भी प्रक्रिया में)।

चूंकि बैंकिंग प्रणाली को उदार बनाया गया है और यह व्यापक रूप से बाजार अभिमुख हो गई है तथा साथ ही साथ वित्तीय बाजार का विकास हुआ है, मौद्रिक नीति के संचालन की रूपरेखा भी बदलते वातावरण की सच्चाइयों को ध्यान में रखकर बनाई गई है (प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष लिखतों की ओर अंतरण)।

वित्तीय निगरानी के इस समष्टि दृष्टिकोण से नीति निर्माता बदलते बाजार और संस्थागत गतिशिलता के अनुसार अपने नियामक रुझान का अच्छा तालमेल बिठा सके हैं जिससे वृद्धि और स्थिरता की चिताएं संतुलित हो सकी हैं। उदाहरण के लिए, विवेकपूर्ण मानदंडों के शनैः शनैः कड़े होने के बावजूद, कुल ऋणों में अनर्जक ऋणों (एनपीएल) का अनुपात, जो मार्च 1997 के अंत में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (एससीबी) के लिए 15.7 प्रतिशत की ऊँचाई पर था, मार्च 2005 के अंत में दो तिहाई से अधिक घटकर 5.2 प्रतिशत हो गया है (सारणी 7)। ऋण हानि का प्रावधान करने में सुधार और सुधरी हुई वसूली व्यवस्था के कारण निवल एनपीए में भी काफी कमी हुई जो कुल प्रावधानों और आकस्मिकताओं के आधे से अधिक है, बैंकिंग क्षेत्र की पूंजी पर्याप्तता में भी अच्छा-खासा सुधार हुआ और मार्च 2005 के अंत में यह 12.8 प्रतिशत पर पहुँच गया, जो 9 प्रतिशत के निर्धारित स्तर से ऊपर था। बैंकों को भी ऋण तथा परिचालनात्मक जोखिमों हेतु सुदृढ़ जोखिम प्रबंधन प्रणाली विकसित करने के लिए सुग्राह्य बनाया

सारणी 7 : विभिन्न बैंक समूहों के अनर्जक ऋण : 1994-2005

(कुल अग्रिमों का प्रतिशत)

वर्ष (मार्चांत)	पीएसबी	पुराने निजी बैंक	नए निजी बैंक	विदेशी बैंक	*मीमो : एनपीएल / कुल ऋण (प्रतिशत)*
1994	24.8	संकलित नहीं	संकलित नहीं	संकलित नहीं	चीन : 15.6
1995	19.5	संकलित नहीं	संकलित नहीं	संकलित नहीं	इंडोनेशिया : 13.4
1996	18.0	संकलित नहीं	संकलित नहीं	संकलित नहीं	कोरिया : 1.7
1997	17.8	10.7	2.6	4.3	मलेशिया : 11.6@
1998	16.0	10.9	3.5	6.4	अर्जेंटाइना : 17.5@
1999	15.9	13.1	6.2	7.6	ब्राजील : 3.9
2000	14.0	10.8	4.1	7.0	अमरीका : 0.8
2001	12.4	10.9	5.1	6.8	ब्रिटेन : 2.2
2002	11.1	11.0	8.9	5.4	जापान : 2.9
2003	9.4	8.9	6.7	5.3	
2004	7.8	7.6	5.0	4.6	
2005	5.5	6.0	3.6	2.8	*वैश्विक सीमा : [0.3 से 30.0]*

@ : 2005 से संबंधित। एनसी : संकलित नहीं।

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सारणी से गणना की गई।

गया है तथा बाजार ऋण मानदंडों, जैसे ब्याज दरें, के विपरीत चलनों का सामना करने के लिए उन्हें अपनी आस्ति देयता परिपक्वता प्रोफाइल पर ध्यान देने तथा सही सुधारात्मक उपाय करने के लिए कहा गया है।

बैंक के तुलन-पत्र में, अंतरराष्ट्रीय लेखांकन अनियमितताओं और विनियामक पहल की दो शक्तियों के कारण दूसरी उत्साहजनक गतिविधि कंपनी अभिशासन पर अधिक जोर देना रहा है। उनकी वार्षिक रिपोर्ट के भाग के रूप में बैंक वर्तमान में कंपनी अभिशासन पर रिपोर्ट शीर्ष के अंतर्गत निदेशक मंडल का विवरण, सदस्यों द्वारा भाग ली गई बोर्ड की बैठकों की संख्या, बोर्ड की विभिन्न उप समितियों के और यदि बैंक सूची में शामिल हैं, के ब्योरे तथा शेयर मूल्यों के बढ़ने-घटने की सूचनाएं देते हैं। यह कंपनी अभिशासन पर बैंकों के दर्शन और बैंकों द्वारा अपने दर्शन को पाने के लिए अपनाई गई मजबूत व्यवस्था से पूरित हैं। जैसा कि आप जानते हैं, ऐसी सूची बनाना बाजार अनुशासन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण घटक है जो प्राधिकारियों द्वारा की गई विनियामक पहल को बल देती है। बैंकों में अभिशासन की प्रक्रिया को एक कदम और आगे बढ़ाने के लिए हमने कुछ समय पहले दिशा-निदेश जारी किए थे जिसमें निजी बैंकों में स्वामियों और निदेशकों की 'सही और उपयुक्त' हैसियत को तय करने के लिए पारदर्शी मापदंड दिए गए हैं। नीति निर्माण में विचार-विमर्श के दृष्टिकोण पर हमारे फोकस को देखते हुए, इस विषय पर बहस को बढ़ावा देने के लिए दस्तावेज को भारतीय रिज़र्व बैंक की वेबसाइट पर डाला गया था। प्राप्त फीड बैक के आधार पर बैंकों को अंतिम दिशा-निदेश जारी करने के पहले प्रारूप की समीक्षा की जा रही है।

पूरी नीति सुधार प्रक्रिया बैंकिंग प्रणाली को और बाजार अभिमुख करने के लिए बनाई गई है जिससे कीमत चयन कुशलतापूर्वक किया जा सके और संसाधन आबंटन प्रक्रिया में और अधिक आंतरिक कार्यकुशलता लाई जा सके। इस प्रकार, जबकि 1960, 1970 और 1980 के दशकों के प्रयास अनिवार्य रूप से वित्तीय सुदृढ़ता को बढ़ाने वाले थे - पिछले डेढ़ दशक के सुधारों का केंद्र खास तौर से बैंकिंग प्रणाली में और कुल मिलाकर वित्तीय क्षेत्र में और अधिक कार्यकुशलता तथा उत्पादकता को उत्पन्न करना रहा है। हम कितना सफल हुए हैं ?

4. बैंकिंग में कार्यकुशलता और उत्पादकता विश्लेषण

हाल के समय में, विद्वानों की एक बड़ी सभा बनी है जो वित्तीय उदारीकरण के कारण वित्तीय संस्थाओं के कार्य-निष्पादन पर काम करती है। ये अध्ययन स्वरूप में अनिवार्यतः व्यष्टि आर्थिक है और बैंकिंग प्रणाली की कार्यकुशलता और उत्पादकता का विश्लेषण करते हैं। ऐसे विश्लेषण नीति के दृष्टिकोण से प्रासंगिक हैं, क्योंकि वित्त-वृद्धि साहित्य का सुझाव की सलाह है कि यदि बैंक भली प्रकार कार्य करने वाले निकाय बन जाते हैं तो ऐसी आशा है कि इसका प्रभाव वित्तीय प्रणाली की सुरक्षा और सुदृढ़ता पर पड़ेगा और जो अंततः आर्थिक वृद्धि की दर को आगे बढ़ाएगा। और महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे विश्लेषण नीति निर्माताओं के लिए नीतिसंबंधी पहल की सफलता अथवा असफलता को पहचानने में लाभप्रद हैं अथवा विकल्पतः ऐसी बैंकिंग फर्मों द्वारा अपनाई गई विभिन्न रणनीतियों पर प्रकाश डालते हैं जो उनकी सफलताओं में योगदान करती हैं।

बिना वास्तविक अध्ययन के अविनिमयन से प्रतियोगी शक्तियों के सामने आने की आशा है। ऐसी प्रतिस्पर्धा से बैंक अपनी निविष्टियों और उत्पाद मिश्रों को जो तकनीकी विकास सुविधाओं के साथ जोड़े जाने पर उत्पादन में वृद्धि करेंगे, बदल सकेंगे जिससे बैंक की समग्र उत्पादकता और कार्यकुशलता बढ़ेगी। दूसरे, अविनिमयन प्रक्रिया के एक भाग के रूप में नए निजी और विदेशी बैंकों के उदार आगमन से

बैंकों की कार्यकुशलता, उत्पादकता और तकनीकी स्तर के बढ़ने की आशा है क्योंकि नए निजी/विदेशी बैंक सर्वश्रेष्ठ प्रबंधन व्यवहारों और तकनीक को अपनाते हैं जिसे फलदाई रूप में उनके द्वारा अपनाया जा सकता है, जिन्होंने अपनाया नहीं है। जन इच्छाओं से लेते हुए, विचारों के एक तीसरे समूह का कहना है कि विभिन्न प्रकार के स्वामित्व ढाँचे कार्यकुशलता के विभिन्न स्तरों को जन्म दे सकते हैं। सैद्धांतिक तर्क सीधा-सादा हैः पूंजी बाजार में अनुशासन की कमी से प्रबंधन पर स्वामियों का नियंत्रण कमजोर होता है जिससे वे अपने स्वार्थों को देख सकते हैं तथा जो उनको कार्यकुशल बनाने के लिए और कम प्रोत्साहन देते हैं। अंत में, चूँकि आज विश्व में बैंकिंग तकनीक प्रधान हो गई है और तकनीकी प्रगति बड़े पैमाने पर बढ़ ही रही है, तो ऐसे में बैंक आकार और तकनीकी कार्य कुशलता के बीच संबंध महत्वपूर्ण हो जाता है। इसके विपरीत संदेहवादी तर्क करते हैं कि विनियमन को हटाने से सामान्यतया बैंकों की परिचालन लागत बढ़ेगी और बैंकिंग गतिविधियों के बहुत अधिक बढ़ने के कारण वित्तीय कमजोरी आ सकती है। इस प्रकार, अविनियमन के पश्चात् उत्पादता के लाभ अस्थायी तथा अंत में वहनीय नहीं हो सकते हैं। परिणाम के रूप में, विनियमन को हटाने और कार्यकुशलता/उत्पादकता के बीच एक दिशात्मक संबंधों के प्रमाण अंतिम नही हैं।

अनुमान के विभिन्न तरीकों के बावजूद बैंकिंग में कार्यकुशलता और उत्पादकता के अध्ययनों की, बैंकों के आगतों और उत्पादों की सही परिभाषा के अभाव में सीमाएं हैं। नतीजन, तमाम दृष्टिकोण विद्यमान हैं और हरेक दृष्टिकोण की उपयुक्तता परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग है (बॉक्स II)।

बॉक्स II : वाणिज्यिक बैंकों की निविष्टि (इनपुट) और उत्पाद (आउटपुट)

बैंक स्वरूप में बहु-निविष्टि और बहु-उत्पाद प्रकार की फर्म हैं। नतीजन, निविष्टि और उत्पाद की परिभाषा कठिनाइयों से भरी है क्योंकि बहुत सी वित्तीय सेवाएं संयुक्त रूप से उत्पादित की जाती हैं और कीमतें खासतौर से वित्तीय सेवाओं के समूह के लिए निर्धारित होती हैं। । इसके अलावा, बैंक वास्तव में उत्पादित उत्पाद की दृष्टि से एकरूप नहीं हो सकते हैं। इन जटिलताओं को देखते हुए, बैंकिंग उत्पाद पर चार दृष्टिकोण हावी हैं : उत्पादन दृष्टिकोण, मध्यस्थता दृष्टिकोण, परिचालन (आय आधारित) दृष्टिकोण और अधिक हाल में, आधुनिक दृष्टिकोण।

उत्पादन दृष्टिकोण के अंतर्गत, बैंकों को मुख्य रूप से ग्राहकों को सेवा प्रदाता के रूप में देखा जाता है। इस दृष्टिकोण के अंतर्गत निर्धारित निविष्टि में भौतिक परिवर्तनशील घटक (अर्थात श्रम, सामग्री, स्थान अथवा सूचना प्रणाली) शामिल हैं और उत्पाद ग्राहकों को दी गई सेवाएँ हैं और उनको जमा और ऋण खातों की संख्या द्वारा सर्वोत्तम तरीके से मापा जा सकता है।

मध्यस्थता दृष्टिकोण के अंतर्गत, वित्तीय संस्थाओं को बचतकर्ता और निवेशकों के बीच निधियों की मध्यस्थता करने वाले के रूप में देखा जाता है। बैंक जमा और अन्य देयताओं के संग्रहण और उनका ब्याज अर्जक आस्तियों जैसे ऋण, प्रतिभूतियों और अन्य निवेशों में नियोजन करके मध्यस्थता सेवाएं प्रदान करते हैं। इस दृष्टिकोण में परिचालन और ब्याज व्ययों को निविष्टि के रूप में तथा ऋण और अन्य बड़ी आस्तियों को उत्पाद के रूप में गिना जाता है। सिद्धांत रूप में, इस मध्यस्थता दृष्टिकोण के तीन प्रकार हैंः आस्ति दृष्टिकोण, प्रयोगकर्ता लागत दृष्टिकोण तथा मूल्यवर्धित दृष्टिकोण। आस्ति दृष्टिकोण बैंकिंग गतिविधि का 'रिड्यूस्ड फार्म मॉडल' है जो बैंकों की भूमिका को पूरी तरह से जमाकर्ताओं और बैंक की आस्तियों के अंतिम प्रयोगकर्ताओं के बीच वित्तीय मध्यस्थता के रूप में केंद्रित करता है। वास्तविक संसाधनों (श्रम और भौतिक पूंजी) सहित जमा और अन्य देयताओं को निविष्टि के रूप में परिभाषित किया जाता है जबकि उत्पाद समूह में अर्जक आस्तियों जैसे ऋणों और निवेशों को शामिल किया जाता है। बैंक के राजस्व में निवल योगदान के आधार पर कोई वित्तीय उत्पाद निविष्टि है अथवा उत्पाद, इसका निर्धारण प्रयोगकर्ता लागत दृष्टिकोण करता है। यदि किसी आस्ति पर वित्तीय आय उन निधियों की अवसर लागत से अधिक हो अथवा, यदि किसी देयता की वित्तीय लागत अवसर लागत से कम हो, तो उन्हें उत्पाद के रूप में माना जाता है, अन्यथा उन्हें निविष्टि के रूप में समझा जाता है। मूल्यवर्धित दृष्टिकोण उत्पादित जमा और ऋणों के बड़े वर्गों की उत्पाद के रूप में पहचान करता है क्योंकि वे मूल्यवर्धन के काफी बड़े हिस्से हैं।

परिचालन दृष्टिकोण (अथवा आय आधारित दृष्टिकोण) बैंकों को कारोबार इकाई के रूप में देखता है जिसका अंतिम उद्देश्य कारोबार को चलाने की कुल लागत से आय अर्जित करना है। तदनुसार, यह बैंक के उत्पादों को कुल आय (ब्याज और गैर ब्याज) तथा निविष्ट को कुल व्यय (ब्याज और परिचालन व्यय) के रूप में परिभाषित करता है।

अंत में, आधुनिक दृष्टिकोण जोखिम, एजेंसी लागतों और बैंक सेवाओं कों गुणवत्ता को शामिल करने का प्रयास करता है। इस दृष्टिकोण में 'कैमल' के अलग-अलग घटकों को बैंकों की वित्तीय सारणियों से प्राप्त किया जाता है और कार्यनिष्पादन विश्लेषण में उन्हें परिवर्तकारी घटकों के रूप में प्रयोग किया जाता है।

स्रोत : बर्गर तथा हम्फी (1992) और फ्रेक्सियाज तथा राचेट (1997) से रूपांतरित)

4 कैमल का पर्याय है - पूँजी पर्याप्तता, आस्ति गुणवत्ता, प्रबंधन आय और चलनिधि

भारतीय बैंकों की प्रतिस्पर्धा और लाभप्रदता

1992 की शुरूआत से, भारतीय बैंक घरेलू और अंतरराष्ट्रीय कठोर प्रतिस्पर्धा से धीरे-धीरे रूबरू हुए। निजी क्षेत्र में खुले नए बैंकों और कई विदेशी बैंकों के प्रवेश और विस्तार ने जमा और ऋण बाजार में बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा ला दी। इन गतिविधियों के परिणामस्वरूप, वाणिज्यिक बैंकों की कुल आस्तियों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का अंश लगातार घट रहा है। हरफिंडल के कॉन्सेंट्रेशन इंडेक्स के गिरते रुझान से प्रतियोगी दबाव के साक्ष्य को समर्थन मिला है (सारणी 8)। ऐसे परिवर्तनों के बावजूद सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अब भी मुख्य आधार बने हुए हैं, जिनकी आस्तियां और आय में लगभग तीन-चौथाई की हिस्सेदारी है। यह महत्वपूर्ण बात है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने प्रतिस्पर्धा की नई चुनौतियों को स्वीकारा है, बैंकिंग क्षेत्र के समग्र लाभ में इन बैंकों के अंशों के बढ़ने से ऐसा पता चलता है। 1990 के दशक के मध्य में निवल हानि की स्थिति से, हाल के वर्षों में वाणिज्यिक बैंकिंग प्रणाली के लाभ में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का अंश मोटे तौर पर उनकी आस्तियों के अंश के समानुपात हो गया है जो कि विभिन्न बैंक समूहों के बीच लाभदायकता के व्यापक विलय को दर्शाता है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि परिचालनात्मक लोच के साथ, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक निजी क्षेत्र के और विदेशी बैंकों से सापेक्षतया प्रभावी ढंग से प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के सूचीबद्ध किए जाने से लाए गए 'बाजार अनुशासन' ने संभवतः इस सुधरे हुए कार्यनिष्पादन में अपना योगदान किया है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का प्रबंध संभवतः अपने कार्य-कलापों के बाजार परिणामों से अधिक परिचित है (मोहन, 2005)।

सारणी 8 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के जमा और ऋण पर हरफिंडल का कॉन्सेन्ट्रेशन इंडेक्स : 1992-2004

(प्रतिशत)

वर्ष (मार्चांत)	जमा	ऋण
1992	8.1	10.4
1993	7.6	10.1
1994	7.4	8.6
1995	7.0	7.9
1996	6.9	7.8
1997	6.7	7.3
1998	6.6	7.4
1999	7.1	7.2
2000	6.9	6.9
2001	7.3	6.7
2002	7.1	6.0
2003	6.9	6.0
2004	6.3	5.8

स्रोत : लेखक के परिकलन।

1990 के दशक के अंतिम भाग में हल्की ब्याज दर प्रणाली के अनुरूप बैंकों की ब्याज-आय और ब्याज-व्यय दोनों कुल आस्तियों के समानुपात में घटे। लेकिन, ब्याज-व्यय ब्याज-आय की तुलना में और तेजी से घटे जिससे निवल ब्याज-आय में वृद्धि हुई। गैर ब्याज आय में, जो अधिकांशतया फीस आधारित कार्यों से होती है, सुधार अवधि के पश्चात लगातार वृद्धि हो रही है। उदाहरण के लिए बैंकिंग क्षेत्र की कुल आस्तियों के एक समानुपात के रूप में गैर ब्याज आय 1993 में रही 1.2 प्रतिशत से 2004 में 2 प्रतिशत से अधिक बढ़ी (सारणी 9)। इस संदर्भ में, यह कहना भी समीचीन होगा कि भारतीय बैंकों, खास तौर से, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को अभी भी विदेशी प्रतिपक्षियों (काउंटरपार्ट) की पूरी तरह बराबरी करनी है।

भारतीय बैंकों की कार्यकुशलता

बैंकिंग प्रणाली की कार्यक्षमता में सुधार का असर अन्य बातों के साथ-साथ, परिचालन व्यय को कम करने, ब्याज अंतर (स्प्रेड) और सामान्यतया मध्यस्थता लागत पर पड़ने की आशा है। विभिन्न समयों में बैंकिंग उत्पादन लागत की तुलना करने के लिए बैंकिंग साहित्य में अनेक संकेतक प्रयोग किए गए हैं। उदाहरण के तौर पर, मध्यस्थता लागत में, जिसे कुल आस्तियों के परिचालन व्यय के अनुपात के रूप में परिभाषित किया जाता है, सुधार अवधि के पश्चात विदेशी बैंकों को छोड़कर विभिन्न बैंकों के समूह में शनैः शनैः कमी दिखी (सारणी 10)।

सारणी 9 : अनुसूचित वाणिज्य बैंकों की गैर ब्याज आय : 1992-2004

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष मार्चांत	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	भारतीय निजी बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1992	1.22	1.03	3.40	1.38
1993	1.19	1.13	0.99	1.17
1994	1.26	1.34	2.22	1.34
1995	1.26	1.43	2.46	1.36
1996	1.39	1.68	2.35	1.49
1997	1.32	1.64	2.54	1.45
1998	1.33	1.94	2.96	1.52
1999	1.22	1.36	2.46	1.33
2000	1.28	1.67	2.60	1.43
2001	1.22	1.28	2.47	1.32
2002	1.43	1.59	2.91	1.57
2003	1.66	2.45	2.64	1.86
2004	1.91	2.08	2.98	2.01

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित विभिन्न वर्षों के सांख्यिकीय सारणी से लिया गया।

5 अलग अलग बैंकों के बाजार अंशों के वर्गों के जोड़ के रूप में परिभाषित किया गया। सूचकांक में कमी सामान्यतया मूल्यन शक्ति के ह्रास और प्रतिस्पर्धा में वृद्धि को दर्शाती है।

सारणी 10 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों की मध्यस्थता लागत* - 1992-2004

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष मार्चांत	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	भारतीय निजी बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1992	2.60	2.97	2.26	2.59
1993	2.64	2.71	2.70	2.65
1994	2.65	2.49	2.65	2.64
1995	2.83	2.35	2.73	2.79
1996	2.99	2.47	2.78	2.94
1997	2.88	2.36	3.04	2.85
1998	2.66	2.14	2.99	2.63
1999	2.65	2.04	3.40	2.65
2000	2.52	1.85	3.12	2.48
2001	2.72	1.87	3.05	2.64
2002	2.29	1.45	3.03	2.19
2003	2.25	1.99	2.79	2.24
2004	2.20	2.01	2.76	2.20

* मध्यस्थता लागत = परिचालन व्यय

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सारणी से लिया गया, विभिन्न वर्षों में

मध्यस्थता लागत की इस कमी की, सूचना तकनीक के उन्नयन और 'कोर बैंकिंग सोलूशन' पर हुए बहुत अधिक व्ययों के मद्देनजर समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है। यह स्वीकृत तथ्य है कि भारत में बैंकों में मध्यस्थता लागत विकसित बैंकिंग बाजारों की तुलना में अधिक है और पृथक् पृथक् स्तर पर, यह स्पष्ट है कि भारतीय बैंकों ने सुधार की अवधि के पश्चात् अपनी कार्यकुशलता में सुधार किया है, जो प्रति इकाई उत्पादन की लागत के गिरते रुझान से स्पष्ट है, उत्पादन का विकल्प चाहे कुछ भी रहा हो (सारणी 11)। अर्जक आस्तियों की प्रति इकाई परिचालन लागत 1992 की 2.1 प्रतिशत से घटकर 2004 में 1.8 प्रतिशत हो गई, इसी तरह कारोबार की कुल मात्रा की प्रति इकाई परिचालन लागत इसी अवधि के दौरान 3.4 प्रतिशत से घटकर 2.6 प्रतिशत हो गई। परिचालन व्यय के घटकों में, उत्पादन की प्रति इकाई कर्मचारी लागत में सुधार अवधि के पश्चात् उल्लेखनीय कमी हुई। यह कमी सभी बैंक समूहों में दिखी, खास तौर से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में 2001 की अवधि के बाद में, तदुपरांत अनेक राष्ट्रीकृत बैंकों में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के पश्चात्। दूसरी तरफ, उत्पादन की प्रति इकाई भौतिक पूंजी लागत में परिवर्तन सीमांत रहा है, जो इस तथ्य को दर्शाता है कि भारतीय बैंकों ने भौतिक पूंजी निर्माण, खास तौर से ऑटोमेशन और सूचना तकनीक में निवेश का निरंतर प्रवाह बनाए रखा।

कार्यकुशलता के दृष्टिकोण से, मध्यस्थता लागत को गैर ब्याज आय के साथ देखने की आवश्यकता है। 2001 तक, वाणिज्यिक बैंकों का दायित्व (कुल आस्तियों के एक प्रतिशत के रूप में गैर ब्याज आय से गैर ब्याज व्यय की अधिकता) 1 से 1.5 प्रतिशत के आसपास बना रहा (सारणी 12)। मध्यस्थता लागत और फीस आधारित कार्य-कलापों से आय के बीच यह अंतर हाल के वर्षों में काफी कम हुआ है। उदाहरण के लिए, भारतीय वित्तीय बैंकों का दायित्व 1992 के 1.2 प्रतिशत से घटकर 2004 में 0.2 प्रतिशत हुआ। भारत के निजी बैंकों में सुधार काफी महत्वपूर्ण रहे हैं, उनकी गैर ब्याज आय हाल के वर्षों में उनकी मध्यस्थता लागत से अधिक हो गई है और जो ऋणात्मक दायित्व में तब्दील हो गई है।

सारणी 11:अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के परिचालन व्यय और उसके घटक: 1992-2004

(प्रतिशत)

वर्ष (मार्चांत)	परिचालन व्यय / अर्जक आस्तियां@	श्रम लागत / अर्जक आस्तियां @	गैर श्रम लागत/ अर्जक आस्तियां@	परिचालन व्यय / कुल कारोबार*	श्रम लागत / कुल कारोबार*	गैर श्रम लागत / कुल कारोबार*
1992	2.08	1.40	0.68	3.42	2.30	1.12
1993	2.14	1.43	0.72	3.51	2.34	1.17
1994	2.22	1.44	0.78	3.56	2.31	1.25
1995	2.32	1.54	0.78	3.74	2.48	1.26
1996	2.48	1.73	0.75	4.01	2.80	1.22
1997	2.36	1.60	0.76	3.84	2.60	1.24
1998	2.16	1.46	0.70	3.51	2.37	1.14
1999	2.21	1.47	0.74	3.55	2.35	1.20
2000	2.05	1.37	0.68	3.22	2.15	1.06
2001	2.16	1.47	0.69	3.36	2.28	1.07
2002	1.82	1.18	0.64	2.73	1.77	0.96
2003	1.81	1.13	0.69	2.65	1.65	1.00
2004	1.78	1.08	0.71	2.61	1.58	1.03

@ अर्जक आस्तियां = ऋण + निवेश

* कुल कारोबार = जमा + ऋण

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित विभिन्न वर्षों की सांख्यिकीय सारिणी से लिया गया।

6 कुल परिचालन लागत को श्रम लागत और भौतिक पूंजी की लागत के रूप में बाँटा जा सकता है। प्रति इकाई लागत माप तैयार करने के लिए, हम परिचालन लागत और इसके दो घटकों को इस प्रकार अपस्फीति करते हैं। (i) कुछ अर्जक आस्तियां (जमा और निवेश) जो बैंकिंग उत्पादों को मापने में आस्ति दृष्टिकोण द्वारा तर्कसंगत ठहराई गई हैं अथवा (ii) अग्रिमों और जमाओं के कुल जो बैंकिंग उत्पादों को मापने में मूल्यवर्धित दृष्टिकोण द्वारा तर्कसंगत ठहराई जा सकती है।

सारणी 12 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के दायित्व : 1992-2004

(कुल पूंजी के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष (मार्चांत)	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	भारतीय निजी बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1992	1.37	1.94	-1.14	1.21
1993	1.45	1.57	1.70	1.48
1994	1.39	1.16	0.42	1.30
1995	1.57	0.92	0.27	1.43
1996	1.60	0.78	0.43	1.44
1997	1.56	0.72	0.50	1.40
1998	1.33	0.19	0.03	1.11
1999	1.44	0.69	0.94	1.32
2000	1.24	0.18	0.53	1.05
2001	1.51	0.59	0.59	1.32
2002	0.86	-0.14	0.12	0.63
2003	0.59	-0.46	0.15	0.38
2004	0.29	-0.07	-0.22	0.19

* दायित्व = गैर ब्याज आय से गैर ब्याज व्यय घटाया। यह उस सीमा को दर्शाता है जब गैर ब्याज व्ययों की गैर ब्याज आय से भरपाई हो जाती है।

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित विभिन्न वर्षों की सांख्यिकीय सारणी से लिया गया।

भारतीय बैंकों के लागत-आय अनुपात (कुल आय में परिचालन व्यय के अनुपात से ब्याज व्यय को घटाने के रूप में परिभाषित किया गया) में सुधार की अवधि के बाद के दौरान घटने की प्रवृत्ति दिखी। उदाहरण के लिए, भारतीय बैंकों ने 1993 के लगभग 72 प्रतिशत की तुलना में 2004 में श्रम और भौतिक पूंजी का प्रबंध करने पर अपने निवल आय का, मोटे तौर पर 45 प्रतिशत खर्च किया (सारणी 13)। अन्य शब्दों में, भारतीय बैंकों ने सुधार की अवधि के बाद के दौरान अपनी निवल आय का लगभग 27 प्रतिशत निवल लागत बचत के रूप में दिखाया। दि बैंकर 2004 में दिए गए आंकड़ों के अनुसार विश्व के बड़े-बड़े बैंकों का लागत-

सारणी 13 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का लागत आय-अनुपात : 1992-2004

(प्रतिशत)

वर्ष (मार्चांत)	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	भारतीय निजी बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1992	58.4	58.9	30.9	55.3
1993	73.7	66.8	59.2	71.9
1994	73.1	57.3	41.2	68.1
1995	67.6	52.2	40.6	63.5
1996	66.7	51.5	45.6	63.3
1997	64.3	51.3	45.6	61.0
1998	62.7	48.5	43.1	58.9
1999	65.9	58.9	56.9	64.3
2000	63.2	48.6	48.5	59.9
2001	67.0	51.8	50.0	63.4
2002	54.9	45.6	49.1	53.1
2003	47.8	45.1	46.5	47.2
2004	45.1	46.6	42.8	45.1

लागत-आय अनुपात = कुल आय में परिचालन व्ययों के अनुपात से घटाया ब्याज व्यय। यह उस सीमा तक गणना करती है जिस सीमा तक गैर-ब्याज व्यय निवल कुल आय को खा जाती है।

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकों से संबंधित विभिन्न वर्षों की सांख्यिकीय सारणी से लिया गया।

आय अनुपात सुस्पष्ट रूप से 48 प्रतिशत के निम्न से 116 प्रतिशत के उच्च तक भिन्न-भिन्न रहा और लगभग 60 प्रतिशत का अनुपात एक सांकेतिक बेंचमार्क है (भारतीय रिज़र्व बैंक, 2005)। इस संबंध में, भारतीय बैंकों का लागत-आय अनुपात अब अंतरराष्ट्रीय तौर पर तुलना के योग्य है। स्वामित्व की विभिन्न पद्धतियों के बीच, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का लागत-आय अनुपात निजी बैंकों और विदेशी बैंकों की तुलना में सापेक्षिक तौर पर अधिक रहा है।

इस व्याख्या को बैंकों के भिन्न-भिन्न स्वामित्व प्रोफाइल के साथ देखे जाने की आवश्यकता है। पहले के अध्ययनों (सरकार आदि । 1998) में कुछ कमजोर ऐसे प्रमाण पाए गए हैं जिनका कहना है कि स्वामित्व कार्य-निष्पादन का महत्वपूर्ण निर्धारक है। अभी हाल के अध्ययनों में मिश्रित प्रमाण दिखे हैं : जबकि कुछ अध्ययनों का कहना है कि स्वामित्व का बैंक के कार्य-निष्पादन पर कुछ प्रभाव पड़ता है, दूसरों (उदाहरण, भौमिक और डिमोवा, 2004) के विचार इस तरह है कि प्रतिस्पर्धा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को उनके बीच और घरेलू तथा विदेशी और निजी क्षेत्र के बैंकों के बीच स्थित कार्य-निष्पादन अंतर को समाप्त करने के लिए प्रेरित करती है। अभी हाल के शोध ने विभिन्न स्वामित्व हैसियत, अनर्जक ऋणों का स्तर, आकार और आस्ति गुणवत्ता (दास और घोष, 2006) के संदर्भ में भारतीय वाणिज्यिक बैंकों की कार्यकुशलता में अंतर बतलाया है। और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके अध्ययन ने इस तथ्य का खुलासा किया कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) ने सुधार की अवधि के पश्चात और अधिक कार्यकुशलता प्राप्त की। स्पष्ट तौर पर, यह तथ्य अंतिम नही है, क्योंकि तुलनापद्धति अनेक कठिनाइयों से घिरी है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के आकार और भिन्नता को देखते हुए ऐसे बैंकों का पता करना संभव है जो निजी क्षेत्र के अच्छी स्थितिवाले बैंकों और खराब स्थितिवाले बैंकों दोनों के बराबर हैं। इसके अलावा, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सरकारी बैंक की समस्याओं से भी निबटना होगा क्योंकि बहुत सी अनर्जक आस्तियां उनके लिए बोझ बन कर रह गई हैं। कुछ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सीमित विवेकाधिकार के साथ सापेक्षतया पिछड़े हुए क्षेत्रों में कार्य करना पड़ता है, ऐसे क्षेत्रों से वापस निकलने में उनका सीमित विकल्प होता है। सवाल अब भी वही है: क्या निजी क्षेत्र के बैंकों को बढ़ावा देने के लिए सक्षम सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कार्य-निष्पादन में सुधार लाने के लिए बेहतर वेतन (पेऑफ) दिए जाएं, ऐसा उस वैकल्पिक नीति से तुलना करने पर किया जाए जिसमें स्वामित्व के अंतरण और सार्वजनिक से निजी क्षेत्र के नियंत्रण का प्रावधान है। क्या उनके आपस में और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के बीच विलयन तथा अधिग्रहण की व्यापक गुंजाइश से और अधिक कार्यकुशलता आएगी ?

बैंकों में कार्यकुशलता का दूसरा महत्वपूर्ण कारक निवल ब्याज मार्जिन (एनआइएम) है, जिसे ब्याज व्यय के ऊपर ब्याज आय की अधिकता के रूप में परिभाषित किया गया है और जिसे कुल बैंक आस्ति के द्वारा नापा

जाता है। मोटे तौर पर कहा जाए, तो यह अनुपात वित्तीय मध्यस्थता की आबंटनात्मक कार्यकुशलता को दर्शाता है, कम अनुपात अधिक कार्यकुशलता का द्योतक होता है। ऐसा मानना बिल्कुल तर्कसंगत है कि अविनियमन प्रक्रिया द्वारा प्रेरित जमा दरों में गिरावट का बैंकों के उधार देने के व्यवहार पर असर पड़ेगा। व्यवहार में, उधार देने की दरों के नीचे की ओर जाने की प्रवृत्ति है और ये समय-अंतराल में कार्य करती प्रतीत होती है। ऐतिहासिक रूप से भारतीय बैंकों का निवल ब्याज मार्जिन (एनआइएम) अपेक्षाकृत अधिक है। 1992 में सुधार प्रक्रिया की शुरुआत के दौरान भारतीय बैंकों का एनआइएम 3.3 प्रतिशत के लगभग था (सारणी 14)। इसके पश्चात्, हाल के वर्षों में 3 प्रतिशत के लगभग सापेक्षतया हल्की सी गिरावट दिखी। और परंपरागत रूप से, विदेशी बैंकों का, जो अपनी योग्यता के बलबूते पर कम-लागत की जमाराशियां जुटा लेते हैं, एनआइएम सर्वाधिक है, जबकि हाल के वर्षों में निजी बैंकों का सबसे कम रही है। ये तुलनाएं अवरुद्ध नहीं हैः विशेष रूप से छोटे और मझोले बैंकों का 1997 तक का एनआइएम अधिक था। तदुपरांत, बड़े बैंकों के एनआइएम में वृद्धि दिखी। संदर्भगत रूप में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि अधिकांश विकसित देशों और अनेक उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बैंकों का एनआइएम (कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में) 2 प्रतिशत के लगभग है। इससे संकेत मिलता है कि भारत में बैंकिंग प्रतिस्पर्धा को अभी भी और आगे बढ़ाना होगा।

उत्पादकता

भारतीय बैंकिंग में उत्पादकता पर अध्ययन की शुरुआत अभी हाल में हुई है। हाल के अध्ययन में पाया गया है कि कुल कारक उत्पादकता में विनियमन हटाने के बाद की अवधि में सीमांत रूप से सुधार हुआ है, लेकिन विनियमन हटाने के पश्चात् स्वामित्व वर्ग में उत्पादकता अंतरों के घटने के कम प्रमाण हैं (कुंभाकर और सरकार, 2003)। विभिन्न उत्पादकता संकेतकों में, श्रम उत्पादकता संकेतकों जैसे प्रति कर्मचारी कारोबार और प्रति कर्मचारी लाभ, का सामान्यता अधिकांश प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रति शाखा कारोबार को भी शाखा स्तर की उत्पादकता को मापने के लिए प्रयोग किया जाता है। भारतीय बैंकों का प्रति कर्मचारी कारोबार सही अर्थों में 1992 के 5.4 मिलियन से 2004 में 16.3 मिलियन होकर तीन गुने से अधिक बढ़ा, जो वार्षिक मिश्रित वृद्धि दर के लगभग 9 प्रतिशत को दर्शाता है (सारणी 15)। उसी समय, प्रति कर्मचारी लाभ पाँच गुने से अधिक बढ़ा : इस अवधि में 20,000 रुपए से 1,50,000 रुपए, जिसमें लगभग 17 प्रतिशत की मिश्रित वृद्धि हुई। शाखा उत्पादकता में भी साथ ही साथ सुधार हुआ। कुल मिलाकर, शेष प्रमाण सुधार अवधि में बैंकिंग क्षेत्र में विशेष उत्पादकता सुधार की बात करते हैं। विद्यमान साहित्य बतलाता है कि ऐसे सुधार दो कारकों के कारण हो सकते हैं : तकनीकी सुधार, जो उत्पादन संभावनाओं की सीमा और प्रतिस्पर्धा के प्रभाव को बढ़ाते हैं, बैंकों के 'पीयर प्रेसर' उन्हें उत्पादकता के स्तर को बढ़ाने के लिए विवश करते हैं। वित्तीय क्षेत्र के क्रमिक अविनियमन के संदर्भ में, अनेक कारक कार्य कर सकते थे : सर्वोत्तम व्यवहार फ्रंटियर में महत्वपूर्ण परिवर्तन जो तकनीकी उन्नयन समूह के द्वारा संचालित है, वित्तीय नवोन्मेष और कारोबार दर्शन तथा जोखिम आय प्रोफाइल के अनुकूल बैंकों द्वारा अपनाई गई विभिन्न रणनीतियां, बैंकों के आगत-निर्गत की बदलती संरचना और समग्र कार्य कुशलता में सुधार के कारण कुल लागत में

सारणी 14 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का अंतर@ : 1992-2004

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष (मार्चांत)	सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	भारतीय निजी बैंक	विदेशी बैंक	सभी अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक
1992	3.22	4.01	3.90	3.30
1993	2.39	2.92	3.57	2.51
1994	2.36	3.01	4.20	2.54
1995	2.92	3.07	4.27	3.03
1996	3.10	3.10	3.76	3.15
1997	3.16	2.95	4.13	3.22
1998	2.91	2.46	3.97	2.95
1999	2.81	2.11	3.51	2.79
2000	2.70	2.13	3.85	2.72
2001	2.84	2.33	3.64	2.84
2002	2.73	1.58	3.25	2.57
2003	2.52	1.96	3.36	2.48
2004	2.97	2.24	3.47	2.87

@ स्प्रेड = अर्जित ब्याज - प्रदत्त ब्याज

स्रोत : भारिबैंक द्वारा प्रकाशित भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति संबंधी रिपोर्ट, विभिन्न वर्ष।

सारणी 15 : अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के चुनिंदा उत्पादकता संकेतक

(1993-94 की कीमत पर रुपए मिलियन में)

वर्ष	प्रति कर्मचारी कारोबार	प्रति कर्मचारी लाभ	प्रति शाखा कारोबार
1992	5.4	0.02	109.9
1993	5.4	-0.05	110.4
1994	5.4	-0.04	109.2
1995	5.6	0.02	113.0
1996	6.0	0.01	119.6
1997	6.6	0.04	129.0
1998	7.5	0.05	144.9
1999	8.4	0.03	158.7
2000	9.7	0.05	179.4
2001	11.5	0.05	196.2
2002	13.7	0.09	214.9
2003	15.0	0.12	234.8
2004	16.3	0.15	254.5

स्रोत : भारत में बैंकों से संबंधित सांख्यिकीय सारणी।

7 छोटे, मझोले और बड़े बैंकों की परिभाषा इस प्रकार है : छोटे बैंक वे हैं जिनकी अस्तियां 50 बिलियन रुपए है, मझोले बैंक वे हैं जिनकी आस्तियां 50 बिलियन रुपए से अधिक और 100 बिलियन रुपए तक हैं, बड़े बैंक वे हैं जिनकी आस्तियां 100 बिलियन से अधिक लेकिन 200 बिलियन रुपए तक हैं और बहुत बड़े बैंक वे हैं जिनकी आस्तियां 200 बिलियन रुपए से अधिक हैं।

कमी। जबकि उत्पादकता बढ़ाने में इन कारकों के सापेक्षिक मिश्रण को सही-सही बताना कठिन है, एक बात स्पष्ट है : भारतीय बैंकों में सुधारों के पश्चात् महत्वपूर्ण उत्पादकता सुधार दिखा।

बड़े दायरे में, विभिन्न देशों में विनियमन हटाने और बैंकों की उत्पादकता में वृद्धि के अध्ययनों में अलग-अलग विचार दिए गए हैं। विशेषतया, विभिन्न देशों की तुलनाएं अक्सर कठिनाइयों से भरी होती हैं, केवल वित्तीय कंपनियों के समक्ष आने वाली विभिन्न नियामक और आर्थिक व्यवस्थाओं के कारण, बल्कि विभिन्न देशों में जमा और ऋण से जुड़ी सेवाओं की विभेदक गुणवत्ता के कारण भी। मॉडस और पेस्टर (2001) ने 14 यूरोपियन संघ की अर्थव्यवस्थाओं, जापान और अमरीका में लागत और लाभ कार्यकुशलता का विश्लेषण किया है। इन परिणामों से ये प्रमाण मिले हैं कि 1990 के दशक के शुरुआत से बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने अमरीका और यूरोप में लाभ कार्यकुशलता को बढ़ाया है, लेकिन जापानी बैंकिंग प्रणाली में नहीं। ये परिणाम यह भी दर्शाते हैं कि यदि अकार्य कुशलताओं को समाप्त कर दिया जाए तो देशों के बीच लाभप्रदता के अंतर को काफी कम किया जा सकता है। इस प्रकार कार्य कुशलता से हासिल उपलब्धियां लाभप्रदता को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। एशिया के संदर्भ में हाल के अध्ययन में कंपनी अभिशासन के संबंध में दक्षिण पूर्व एशिया (इंडोनेशिया, कोरिया, मलेशिया, फिलीपीन्स और थाइलैंड) के बैंकों के तमाम कार्यकुशलता उपायों का विश्लेषण किया गया है (विलियम्स और गुयेन 2005)। यद्यपि अध्ययन का प्रयोजन अलग था, उनके अनुभववादी परिणामों ने बैंक निजीकरण की नीति को आर्थिक न्याय के रूप में देखा।

मैं अग्रिम पंक्ति के एशियन देशों जैसे चीन और कोरिया के सामने भारतीय बैंकों की कार्यकुशलता और उत्पादकता वृद्धि पर कुछ सामान्य मत व्यक्त करके इस विषय को सार में प्रस्तुत करना चाहूंगा। जहाँ तक बैंकिंग कारोबार में वास्तविक वृद्धि (कीमतों के उतार-चढ़ाव और विनिमय दर के उतार-चढ़ाव के लिए समायोजित) का संबंध है, भारतीय बैंक अच्छी स्थित में हैं। हाल के वर्षों में, भारतीय बैंकों की जमाराशियों और ऋणों में वास्तविक वृद्धि स्पष्ट तौर पर एशिया के अन्य देशों जैसे चीन और कोरिया से अधिक थी। इसी तरह, भारतीय बैंकों की लाभप्रदता, जो आस्तियों पर आय के द्वारा हुई है, भी काफी अधिक है (सारणी 16, 17,18 और 19)। भारतीय बैंकों की मध्यस्थता लागत सापेक्षिक तौर पर कोरिया और चीन से अधिक प्रतीत होती है। इसके अलावा, अन्य एशिया के देशों से तुलना करने पर, भारत में परिचालन की अधिक लागत की गैर ब्याज आय की अधिकता से भरपाई की गई है। अंत में, भारत के 4 शीर्ष बैंक (जिसमें एक नया निजी बैंक शामिल है) और 4 सरकारी स्वामित्व वाले चीन के बैंकों की स्थिति से पता चलता है कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के तीन शीर्ष बैंकों ने काफी कम कर्मचारी उत्पादकता दर्शाई है। लेकिन, अन्य देशों में बैंकों में रोजगार के आँकड़े न होने के कारण, विभिन्न देशों के बीच श्रम उत्पादकता के अंतरों की मात्रा का पता करना कठिन है।

इन निष्कर्षों से निकलने वाला एक स्पष्ट संदेश उत्पादकता और कार्य कुशलता में सुधार लाने में तकनीक की भूमिका है। आज के बैंकिंग विश्व में तकनीकी को संगठन के 'प्रोसेस इंजीनियरों' का मूल साधन माना जाता है। यह बैंकों में डिजाइन, नियंत्रण और सेवा संवितरण के कार्यान्वयन के लिए महत्वपूर्ण है। इसलिए आज बैंकिंग उद्योग में कार्यकुशलता और उत्पादकता का प्रमुख कारक तकनीक का प्रभावी उपयोग है। यह बैंकिंग क्षेत्र में भावी अवसरों का लाभ उठाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है। वस्तुतः यह सभी प्रकार के ग्राहकों की सेवा करने की कुंजी हो गई है जो फुटकर ग्राहकों, कंपनियों और सरकारी ग्राहकों को सुविधाएं प्रदान कर रही है। बढ़ती आधुनिकता, लोच तथा उत्पादों की जटिलता और सेवा के प्रस्तावों ने बैंकिंग से जुड़े जोखिमों का प्रबंध करने में तकनीक के प्रभावी प्रयोग को महत्वपूर्ण बना दिया

सारणी 16 : एशिया के बड़े-बड़े देशों के बैंकों में स्प्रेड (निवल ब्याज मार्जिन)[8]

(कुल आस्ति के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	चीन	इंडोनेशिया	कोरिया	मलेशिया	फिलपाइन्स	थाइलैंड	भारत
1996	1.86	2.92	1.70	2.91	4.07	2.57	3.07
1997	2.27	2.76	1.80	2.94	4.21	3.00	2.83
1998	2.16	-9.38	1.69	3.32	4.52	0.74	2.66
1999	1.83	-3.11	2.03	2.67	3.16	0.69	2.56
2000	1.76	2.21	2.06	3.02	2.54	1.43	2.74
2001	1.78	3.16	2.12	2.83	2.60	1.69	2.54
2002	1.78	3.61	2.33	2.70	2.29	1.84	2.74
2003	1.87	4.22	2.50	2.61	2.30	1.99	2.84

स्रोत : बैंक स्कोप

सारणी 17 : एशिया के बड़े-बड़े देशों के बैंकों की मध्यस्थता लागत (परिचालन व्यय)

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	चीन	इंडोनेशिया	कोरिया	मलेशिया	फिलपाइन्स	थाइलैंड	भारत
1996	1.23	2.39	2.24	1.42	3.52	1.50	2.77
1997	1.24	4.50	2.55	1.49	3.28	2.05	2.60
1998	1.40	4.04	2.53	1.68	3.67	2.54	2.58
1999	1.18	2.83	1.53	1.50	3.38	2.20	2.41
2000	1.12	2.72	1.46	1.70	3.32	1.98	2.57
2001	1.10	2.36	1.42	1.80	3.30	2.01	2.21
2002	1.05	2.73	1.39	1.73	3.16	1.78	2.22
2003	1.01	2.94	1.38	1.61	3.00	1.71	2.19

स्रोत : *बैंक स्कोप ।*

8 भारत के लिए सारणी 16-19 में दिए गए आंकड़े विभिन्न आंकड़ा स्रोतों के कारण पहले की सारणियों से पूरी तरह से तुलनीय नहीं है।

सारणी 18 : एशिया के बड़े-बड़े बैंकों की गैर ब्याज आय

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	चीन	इंडोनेशिया	कोरिया	मलेशिया	फिलपाइन्स	थाइलैंड	भारत
1996	0.26	0.99	1.06	0.98	2.12	0.68	1.44
1997	0.24	2.97	0.93	1.10	1.73	1.00	1.49
1998	0.13	1.31	0.20	1.16	1.96	1.03	1.38
1999	0.17	1.96	0.99	1.00	1.95	0.97	1.47
2000	0.22	1.51	0.74	1.01	1.59	0.62	1.33
2001	0.22	1.08	1.28	1.15	1.73	0.73	1.49
2002	0.25	1.30	0.91	1.11	2.11	0.93	1.83
2003	0.25	1.46	0.80	0.94	2.16	0.95	1.97

स्रोत : *बैंक स्कोप।*

है। लेकिन, भारत में तकनीक का प्रवेश बिल्कुल मध्यम है। 2002 के विश्व विकास संकेतक डाटाबेस में दिए गए आंकड़ों के अनुसार, भारत में प्रति 1000 व्यक्तियों पर कंप्यूटरों की संख्या लगभग 7 थी जो तुलना करने पर अधिकांश उभरती अर्थव्यवस्थाओं में 70-500 के बीच तथा अधिकांश विकसित अर्थव्यवस्थाओं में और भी अधिक थी[9]। जहाँ तक तकनीकी क्षमताओं का संबंध है, बैंकिंग क्षेत्र के अंदर बड़ी असमानताएं विद्यमान है, 2002 में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कुल स्टाफ के प्रतिशत के रूप में 'कंप्यूटर शिक्षित' कर्मचारियों का प्रतिशत लगभग 20 प्रतिशत था, जो तुलना करने पर नए निजी बैंकों में 100 प्रतिशत और विदेशी बैंकों में 90 प्रतिशत के लगभग था (भारतीय रिज़र्व बैंक 2002)। रिज़र्व बैंक द्वारा दिए गए आंकड़े बतलाते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की लगभग 71 प्रतिशत शाखाएं कंप्यूटराइज्ड है। लेकिन कंप्यूटराइजेशन को महज 'गिनती' (अर्थमेटिकल) से ऊपर उठने की आवश्यकता है, इस शब्द को बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की समिति की रिपोर्ट से लिया गया है (भारत सरकार 1998) और इसके स्थान पर, उच्च सेवा और कार्य कुशलता मानक को प्राप्त करने व बनाए रखने के लिए अनुकूलतम रूप से उपयोग करने की आवश्यकता है। वास्तव में, बैंकिंग में उत्पादकता सुधार लाने के लिए तकनीक की भूमिका पर हाल के शोध बतलाते हैं कि कंप्यूटर कर्मचारी और सूचना प्रौद्योगिकी

सारणी 19 : एशिया के बड़े-बड़े बैंकों की गैर ब्याज आय

(कुल आस्तियों के प्रतिशत के रूप में)

वर्ष	चीन	इंडोनेशिया	कोरिया	मलेशिया	फिलपाइन्स	थाइलैंड	भारत
1996	0.29	1.01	0.17	1.40	2.06	-0.56	0.71
1997	0.30	-0.39	-0.84	1.03	1.63	-1.17	0.90
1998	0.20	-46.92	-3.10	0.04	0.85	-5.57	0.54
1999	0.17	-9.20	-1.40	0.96	0.10	-5.88	0.70
2000	0.21	0.46	-0.37	1.29	-0.03	-0.15	0.48
2001	0.20	0.87	0.76	0.68	0.48	1.46	0.69
2002	0.20	1.30	0.60	1.03	0.60	0.21	0.97
2003	0.12	1.61	0.15	1.08	1.08	0.63	1.14

स्रोत : *बैंक स्कोप*

पूंजी, संबंधित गैर कंप्यूटर कर्मचारियों तथा गैर सूचना प्रौद्योगिकी पूँजी से, अधिक उत्पादकता प्रदर्शित कर रहे हैं (हुआंग, 2005)। इसलिए, चुनौतियां तीन प्रकार से मौजूद हैं : 'सही' तकनीक का प्रयोग करना, इसे अनुकूलतम रूप से लगाना और कम लागत वाली होना, जबकि ऐसा करते समय शेयर धारकों को उपयुक्त आय प्राप्त हो। असल में, अधिकतम लाभ उठाने के लिए तकनीक का 'प्रबंध' करना भारतीय बैंकों के लिए एक बड़ी चुनौती है।

5. भावी मार्ग

हम किस प्रकार का भविष्य चाहते हैं ? इस संदर्भ में, मैं उन मुद्दों को आपको बताना चाहूँगा जिन्हें बैंकों में उत्पादकता और कार्यकुशलता पर चर्चा करते समय ध्यान में रखने की आवश्यकता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं, कि ये मुद्दे उन अर्थव्यवस्थाओं में विभिन्न मात्रा में सामयिक बने हुए हैं जो बैंकिंग क्षेत्र में हमारी तरह समान विशेषताएं रखती हैं।

प्रथम, आप लोग जानते होंगे कि रोजगार सृजन और निर्यात में भी उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए भारत में छोटे और मझोले उद्यम (एसएमईज) औद्योगिक और सेवा क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । छोटे और मझोले उद्यमों के फारवर्ड और बैकवार्ड लिंकेज के साथ गांवों में नई-नई गतिविधियों जैसे कृषि-क्लीनिक, संविदा कृषि, और ग्रामीण आवास के आने से, बैंकों के लिए एसएमई को उधार देना एक लाभप्रद आय का साधन बन गया है। रिज़र्व बैंक ने अनेक उपाय करके ऋण प्रवाह को सरल और कारगर बना दिया है और इस हिस्से की ऋण सुपुर्दगी की संरचनात्मक अड़चनों को दूर करने का प्रयास किया है। उनमें से कुछ प्रमुख हैं : वित्त पोषण के लिए स्वनिर्धारित लक्ष्य तय करना, ऋणों की लागत का यौक्तीकरण, औपचारिक ऋण की सीमाओं को और बढ़ाना तथा ऋण विस्तार के लिए व्यापक और उदार नीतियां बनाना। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को सलाह दी गई है कि वे लघु और मझोले उद्यमों के बाहुल्य वाले समूहों / केंद्रों की पहचान करके विशिष्ट एसएमई शाखाएं खोलें। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण घटना संसद में ऋण सूचना कंपनी (विनिमयन) अधिनियम, 2005 का पारित होना रहा है। इस अधिनियम से आशा है कि ऋण सूचना कंपनियाँ स्थापित करने को बढ़ावा मिलेगा और इस प्रकार उधारकर्ताओं को ऋण पृष्ठभूमि की जानकारी के आदान-प्रदान में सहायता मिलेगी। इसमें उपयुक्त जोखिम मूल्यांकन मॉडल और तंत्र के होने से, ऐसी आशा है कि बैंकों की लेन-देन लागतें और कम होंगी। इस प्रक्रिया का समग्र प्रभाव एसएमई से लिए जाने वाली ब्याज दरों से जुड़े जोखिम प्रीमियम को कम करने में प्रतिबिंबित होने की संभावना है

9 2001 में पाकिस्तान के लिए दिया गया आंकड़ा 4.21 था।

जिससे एसएमई क्षेत्र को उधार देने वाले बैंक को सकारात्मक ऋण प्रसार में सहायता मिलेगी।

यद्यपि वित्तीय सेवाओं के उदारीकरण और प्रतिस्पर्धा ने ग्राहक सेवाओं में सुधार किया है, परंतु अनुभव बताते हैं कि ग्राहकों के हितों को हमेशा वरीयता नहीं दी जाती। और महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे बैंकिंग व्यवहारों पर चिंता जतलाई गई है जो आबादी के बड़े हिस्से को वंचित रखते हैं। इस संदर्भ में, रिज़र्व बैंक ने वंचित-वर्ग की आवश्यकताओं के अनुकूल विस्तारित सेवाएं देने के लिए बैंकों को प्रोत्साहन देकर नीतियों को कार्यान्वित करने के लिए अपने इरादों की घोषणा की है। इस प्रक्रिया के एक भाग के रूप में, रिज़र्व बैंक ने हाल में सभी बैंकों को सूचित किया है कि वे मूल बैंकिंग के 'नो फ्रिल्स' खाते खोलने की सुविधा प्रदान करें जिसमें या तो 'निल' अथवा बहुत कम न्यूनतम जमाशेष और प्रभार हो जिससे जनसंख्या के एक बड़े भाग की ऐसे खातों तक पहुँच हो सके। ऐसे खातों के स्वरूप और लेनदेनों की संख्या पर पाबंदी लगाई जा सकती है लेकिन ग्राहकों को इसकी जानकारी पहले से ही पारदर्शी रूप में दी जाए। बैंकों से अनुरोध किया गया है कि वे इस सुविधा का व्यापक प्रचार प्रसार करें जिससे काफी हद तक वित्तीय समावेशन किया जा सके।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था का वृद्धि प्रदर्शन प्रति वर्ष लगभग 6 प्रतिशत से 8 प्रतिशत संभावित रूप से वृद्धि दर के आसपास रहने का संकेत करता है। फिर भी, वृद्धि की उच्चतर दर को अच्छी प्रकार से पाने के लिए काफी प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। वर्तमान वृद्धिशील पूँजी-उत्पाद अनुपात में कमी को हिसाब में लेने के बाद भी निवेश का वर्तमान स्तर ऐसी वृद्धि की दरों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। वित्तीय समेकन के पहलू पर ध्यान न देकर, वृद्धि की दर को बढ़ाने के लिए अनेक जगहों पर पूरी शक्ति से कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता है। पहला मुद्दा कृषि और सहायक कार्यकलापों में निवेश का है, यह क्षेत्र सघउ का 21 प्रतिशत उत्पादन करता है लेकिन आबादी के लगभग 60 प्रतिशत को सहारा देता है। अपर्याप्त भंडारण तथा परिवहन सुविधाओं और पर्याप्त खाद्य प्रसंस्करण क्षमता की कमी के कारण प्रायः उत्पादन में काफी हानि होती है। इससे न केवल कीमत बढ़ाने के लिए फसल के बाद इन सुविधाओं पर बहुत अधिक सरकारी और निजी निवेश आवश्यक हो जाता है, बल्कि कृषि-उद्योग लिंकेज भी बढ़ता है। आयात का दूसरा मुद्दा क्रियाविधि का सरलीकरण है। कठिन क्रिया-विधि की औपचारिकताओं से विलंब होता है और इसका परिणाम काफी उत्पादन की हानि होता है। इनके साथ, लघु उद्योग क्षेत्र के अंतर्गत अनन्य उत्पादन की मदों पर आरक्षण समाप्त करने से इस क्षेत्र में अर्थव्यवस्था में कम लागत पर अधिक उत्पादन और उसके विस्तार की संभावना है जिससे प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। तीसरा मुद्दा वित्त का है । इन्फ्रास्ट्रक्चर, उद्योग और सेवाओं में आरंभिक निवेश उत्साह के अच्छे परिणाम केवल तभी आएंगे जब प्रचुर संसाधन प्रवाहों की कम लागत पर सफलतापूर्वक मध्यस्थता की जाए। यह सूचनाओं को सही तरीके से प्रक्रियाबद्ध करने तथा विशिष्ट फर्मों और क्षेत्रों द्वारा विद्यमान बचतों का अनुकूलतम निवेश करने के लिए मध्यस्थता करने में वित्तीय क्षेत्र की योग्यता पर निर्भर होगा। निवेश बढ़ाने का चौथा पहलू इन्फ्रास्ट्रक्चर की कमियों को दूर करना है। इन्फ्रास्ट्रक्चर के सार्वजनिक व्यय में गिरावट की निजी क्षेत्र द्वारा पर्याप्त रूप से भरपाई नहीं की गई है, संभवतः नियामक वातावरण में कठिनाइयों के कारण। इसलिए, एक उपयुक्त नीतिगत ढाँचा तैयार करना, जिसमें सार्वजनिक-निजी सहभागिता का अनुकूल वातावरण हो, इन्फ्रास्ट्रक्चर में निवेश बढ़ाने के लिए प्रमुख है। अंतिम पहलू अधिक विदेशी निवेश, मुख्य रूप से एफडीआइ को घरेलू निवेश का पूरक बनने की आवश्यकता है। ऐसा निवेश संभवतः तकनीक के प्रसार को बढ़ाएगा, मानव पूँजी के निर्माण में सहायक होगा तथा सामान्य रूप से, संसाधनों के उपयोग की कार्यकुशलता में सुधार लाएगा।

सुधार अवधि के पश्चात् अधिकाधिक बैंक शेयर बाजार में सूचीबद्ध हो रहे हैं जिससे कारण बाजार में और अनुशासन आया है तथा साथ ही साथ उनके संचालन में सुधार आया है। इससे सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबीज) के स्वामित्व को व्यापक आधार मिला है। स्वामित्व के ऐसे विविधीकरण से उनकी कार्य-प्रणाली में गुणात्मक अंतर भी आया है क्योंकि निजी शेयरधारिता और शेयरधारकों के मूल्यों के सहायक निर्गमों की शुरुआत की गई है, जैसाकि बाजार पूंजीकरण, बोर्ड प्रतिनिधित्व और अवयस्क शेयरधारकों के हितों द्वारा दर्शाया गया (रेड्डी, 2002)। संस्थागत संरचना के रूप में मिश्रित स्वामित्व का मुद्दा, जब सरकार ब्याज को नियंत्रित करती है, भारत में अभिशासन की मुख्य विशेषता है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कंपनी अभिशासन के ऐसे पहलू महत्वपूर्ण हैं, न केवल इसलिए कि पीएसबीज बैंकिंग उद्योग पर हावी है, बल्कि इसलिए भी यह संभव है कि वे बैंकिंग व्यवसाय में बने रहेंगे। जिस सीमा तक पीएसबीज का सार्वजनिक स्वामित्व है, स्वामी के रूप में सरकार के बहु-उद्देश्यों और जटिल प्रधान-एजेंट के संबंधों को ध्यान में लेने की आवश्यकता है। बैंकिंग सहित अधिकांश कारोबार गतिविधियों की बढ़ती तकनीकी जटिलता और वित्तीय बाजार तथा व्यवहार में परिवर्तन की तेज गति को देखते हुए, पीएसबीज को मिश्रित स्वामित्व के संदर्भ के अंतर्गत उभरती चुनौतियों का सामना करने के लिए काल्पनिक रास्तों को ढूँढने की आवश्यकता है। कुल मिलाकर, पीएसबीज को बढ़ने और समृद्ध होने के लिए यह एक प्रेरक चरण है और यह इन बैंकों पर है कि वे इन चुनौतियों का सामना करें।

अब मैं समाप्त करना चाहूँगा; मेरा भाषण मध्यम धरातल के स्तर पर रहा है, जो भारतीय बैंकिंग में कार्यकुशलता और तकनीकी परिवर्तन पर केंद्रित था। भारतीय बैंकिंग में दिखे कार्यकुशलता और तकनीकी परिवर्तन के पैटर्न को विनियमन हटाने की शक्तियों के कारण किसी उद्योग में हो रहे तेजी से परिवर्तन की प्रत्याशाओं के साथ-साथ देखा जा सकता है। उभरते बाजार की संभावनाओं की प्रतिक्रिया में अग्रिम पंक्ति के कुछ बैंक, उभरते असरों का लाभ उठाने के लिए तेजी से

समायोजन कर लेते हैं जबकि दूसरे सतर्कतापूर्वक व्यवहार करते हैं। चूँकि विनियमन को तेजी से हटाया जा रहा है, अतः वाणिज्यिक बैंकों को अपनी आय और इससे अधिक महत्वपूर्ण उनकी फीस आय को बढ़ाने के लिए काल्पनिक रास्ते ढूँढने की आवश्यकता है जिससे कार्यकुशलता और उत्पादकता के स्तर को बढ़ाया जा सके।

संदर्भ

बैल, सी और पी रूसो (2001) : पोस्ट इंडिपेंडेन्स इंडिया, ए केस ऑफ फइनांस-लेड इंडस्ट्रिलाइजेशन ?'' जॉर्नल ऑफ डेवलपमेंट इकानॉमिक्स, 65, 153-175।

बर्जर, ए.एन. और डी.बी. हम्फ्री (1992) : ''मीजरमेंट एंड इफिसियेंसी इसूज इन कॉमर्शियल बैंकिंग'' इन जेड ग्रिलीचेस (इड) : आउटपुट मीजरमेंट इन दि सर्विसेज सेक्टर, शिकागो, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 245-279।

भौमिक एस.के. और आर. डिमोवा (2004) : ''हाउ इंपॉरटेंट इज ऑनरशिप इन ए मार्केट विद लेवल प्लेइंग फील्ड ?'' दि इंडियन बैंकिंग सेक्टर रिविजिटेड'' जर्नल ऑफ कम्परेटिव इकोनॉमिक्स, 32, 165-180।

भिडे, एम.जी. ए. प्रसाद और एस. घोष (2001) : इमर्जिंग चेलैंज इन इंडियन बैंकिंग, वर्किंग पेपर सं.103, सेटर फॉर रिसर्च इन इकोनॉमिक डेवलपमेंट एंड पालिसी रिफॉर्म, स्टेंफोर्ड यूनिवर्सिटी।

दास, ए. और एस. घोष (2006) : ''फाइनेंशियल डिरेगुलेशन एंड इफीसिऐंसी : एन इम्पाइरिकल एनेलिसिस ऑफ इंडियन बैंकिंग ड्यूरिग द पोस्ट रिफॉर्म पीरियड'', रिव्यू ऑफ फाइनेंशियल इकॉनोमिक्स (आगामी)।

डेमिगुक-कुंट, ए. और मैकसिमोविक (1998) : ''ला, फाइनेंस एंड फर्म ग्रोथड, फ्रांस का जर्नल, 53, 2107-37।

फ्रेशियास, एक्स और जे.सी. रॉचेट (1997) : माइक्रो इकोनॉमिक्स ऑफ बैंकिंग, कैम्ब्रिज एम.ए. : एमआइटी प्रेस।

भारत सरकार (1998) : बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों पर समिति की रिपोर्ट (अध्यक्ष : श्री एम.नरसिंहम), नई दिल्ली।

हुआंग ताई-सिन (2005) : ''ए स्टडी ऑन दि प्रोडक्टिविटीज ऑफ आइटी कैपिटल एंड कंप्यूटर लेबर : फर्म लेवल इविडेंस फ्रॉम ताइवान्स बैंकिंग इंडस्ट्री,'' उत्पात्कता विश्लेषण का जर्नल, 24, 241-257।

कोइवा, पी. (2003) : द परफार्मेंस ऑफ इंडियन बैंक्स ड्यूरिंग फाइनेंशियल लिबरलाइजेशन, आइएमएफ वर्किंग पेपर संख्या, 150, वाशिंगटन डी सी।

कुंभाकर एस. और एस. सरकार (2003) : ''डिरेगुलेशन, ऑनरशिप एंड इफिसियेंसी चेंज इन इंडियन बैंकिंग : इविडेंस फ्रॉम इंडिया'', मुद्रा, ऋण और बैंकिंग का जर्नल, 35, 403-414।

मॉडस, जे. और जे.एम. पेस्टर (2001) : ''कास्ट एंड प्रोफिट इफिसियेंसी इन बैंकिंग : एन इंटरनेशनल कंपेरीजन ऑफ यूरोप, जापान एंड यूएसए'', एप्लाइड इकॉनॉमिक्स लैटर्स, 8, 383-387।

मोहन, आर. (2005) : ''फाइनेंशियल सेक्टर रिफॉर्मस : पॉलिसीज एंड परफार्मेंस एनेलिसिस'', इकानॉमिक पॉलिटिकल वीकली, मुद्रा, बैंकिंग और फाइनेंस का विशेष संस्करण (मार्च), 40, 1106-1121 ।

राजन, आर.जी. एंड एल. जिगेंल्स (1998) : फाइनेंशियल डिपेंडेंस एंड ग्रोथ : अमरीकन इकनॉमिक रिव्यू, 88, 559-86 ।

रंगराजन, सी. एंड एन. जाधव (1992) : ''इसूज इन फाइनेंशियल सेक्टर रिफॉर्मस'', इन बी जालान (इडी) : दि इंडियन इकॉनोमी, दिल्ली, पेंग्विन बुक्स इंडिया।

रे, पी. एंड आइ. सेनगुप्ता (2004) : ''सिस्टेमिक रिस्ट्रक्चरिंग ऑफ बैंक्स : दि इंडियन इक्सीपीरियेंस'', भारतीय बैंकर्स एशोसियेशन का जर्नल।

रेड्डी, वाई.वी (2002) : ''पब्लिक सेक्टर बैंक्स एंड द गवर्नेंस चेलैंज : इंडियन एक्सपीरियंस'', विश्व बैंक, आइएमएफ और ब्रुकिंग्स इंस्टीट्यूट कांफ्रेस, में दिया गया भाषण, अप्रैल ।

भारतीय रिज़र्व बैंक 2000 : मुद्रा और वित्त रिपोर्ट 1999-2000, भारिबैंक, मुंबई।

भारतीय रिज़र्व बैंक 2002 ''एक्सपेंडीचर पैटर्न एंड आइटी इनीशियेटिव्स ऑफ बैंक्स, भारिबैंक बुलेटिन, दिसंबर ।

रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया (2005) : भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति रिपोर्ट 2004-05, भारिबैंक : मुंबई ।

सरकार, जे. एस. सरकार और एस.के. भौमिक (1998) : (इज ऑनरशिप आलवेज मैटर ? इविडेंस फ्रॉम दि इंडियन बैंकिंग इंडस्ट्री'', जर्नल ऑफ कम्परेटिव इकॉनॉमिक्स, 26, 262-281।

स्टिगलिट्ज जे. ई. (1998) : ''मोर इंस्ट्रूमेंट्स एंड ब्रोडर गोल्स : मूविंग टुवर्ड्स द पोस्ट-वाशिंगटन कांसेन्सस'', वाइडर वार्षिक भाषण, हेलसिंकी।

विलियम्स, जे. और गुयेन, एन. (2005) : ''फाइनेंशियल लिबर लाइजेशन, क्राइसीज एंड रिस्ट्रक्चरिंग : ''ए कंपरेटिव स्टडी ऑफ बैंक परफॉर्मेंस एंड बैंक गवर्नेस इन साउथ ईस्ट एशिया'', बैंकिंग और फाइनेंस का जर्नल, 29, 2119-2154।